Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

कामायनी में पर्यावरण–चेतना

डॉ0 मधु शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, नानकचन्द ऐंग्लो संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

सारांश– पर्यावरण शब्द परि एवम् आ उपसर्ग पूर्वक वृञ् आवरणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। वर्तमान युग में पर्यावरण प्रदूषण एक विश्वव्यापिनी समस्या है। वैदिक काल से ही भारतीय मनीषी पर्यावरण–संरक्षण के प्रति सजग रहे हैं। उन्हीं के अनुवर्तन पर छायावाद के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद अपनी कालजयी कृति कामायनी में प्राकृतिक उपादानों को पर्यावरण संरक्षण का हेतु मानते हैं। उनकी दृष्टि में प्रकृति के अंतर्गत वन, पर्वत, नदी, निर्झर, आदि के रूप में पर्यावरणीय संरक्षणात्मक विराट् चेतना विद्यमान है। प्रसाद जी के मत में प्रकृति चेतनायुक्त सत्य और सजीव है ।यहां तक कि उन्होंने पशु–पक्षी आदि को भी पर्यावरण संरक्षण का हेतु स्वीकार किया है ।इसके अतिरिक्त उन्होंने यज्ञीय–अनुष्ठानों को भी पर्यावरण संरक्षण में पर्याप्त सहायक सिद्ध किया है।

मुख्य शब्द– कामायनी, नैसर्गिक, सामञ्जस्य, शोधक, प्राकृतिक–सम्पदा, अनुष्ठान, सर्वांगीण, अतिभौतिकता।

मानव प्राकृतिक परिवेश में जन्म धारण करता है। उसी परिवेश में उसका पालन–पोषण होता है। उसका सर्वांगीण विकास होता है अतः मानव का पर्यावरण से नैसर्गिक सम्बन्ध होता है।

'परितः (सर्वतः) आवरणम् पर्यावरणम्'।।

पर्यावरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है। पर्यावरणीय सन्तुलन बनाए रखने के लिए वातावरण को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है– स्थल मण्डल, जल मण्डल, वायु मण्डल, पर्यावरण का सन्तुलन इन सभी के सामञ्जस्य से सन्तुलित होता है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारतीय चिन्तन में पर्यावरण–संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना मानव जाति का इतिहास।

छायावाद के प्रतिनिधि कवि जयशंकर प्रसाद भी पर्यावरण संरक्षण के प्रति पर्याप्त सजग हैं। उनकी दृष्टि में भी प्रकृति के अन्तर्गत एक ऐसी चेतना–सम्पन्न विराट् सत्ता विद्यमान है, जिसके उदर में वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि सभी समायें हुए हैं। ये सभी प्राकृतिक उपादान पर्यावरण संरक्षण में हेतु बनते हैं। पर्वत पर्यावरण संरक्षण में एवं पर्यावरण को दोषमुक्त रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। वे जहाँ भूमि के रक्षक तथा वर्षा कराने में सहायक होते हैं, वहीं वे पर्वत शुद्ध वायु, पवित्र नदियाँ, जीवनदायिनी औषधियाँ तथा बहुमूल्य खनिज पदार्थ देकर मानव–जीवन को सुखमय बनाते हैं तथा काल रूपी प्रदूषण से बचाते हैं।

''इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्,
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।।''[1]

महाकवि कालिदास ने **'कुमारसम्भवम्'** में हिमालय की राजा के रूप में कल्पना की है। नगाधिराज हिमालय को **'पृथिव्या इव मानदण्डः'** कहकर भारतीय वाङ्मय में इसकी सर्वाधिक महत्ता प्रतिपादित की गई है।[2] कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपने महाकाव्य 'साकेत' में चित्रकूट पर्वत की गुरुता, महत्ता और उच्चता को प्रदर्शित किया है–

"जो गौरव गिरि उच्च उदार,
तुझ पर ऊँचे–ऊँचे झाड़,
तने पत्र मय छत्र पहाड़,
क्या अपूर्व है तेरी आड़,
करते हैं बहु जीव विहार।"[3]

छायावाद के प्रमुख उन्नायक महाकवि जयशंकर प्रसाद की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उनके लिए प्रकृति सजीव थी। इन्होंने सदैव पृथ्वी में चैतन्य का अनुभव किया तथा अपनी भावनाओं का प्रतिस्पन्दन प्राप्त किया। महाकवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी में पर्यावरण उनका वर्ण्य–विषय नहीं है अपितु स्वतः ही आद्युपान्त पर्यावरण–चेतना से उनकी कृति 'कामायनी' ओतप्रोत है। उन्होंने जड़ जगत् अर्थात् पृथ्वी, नदियाँ, पर्वत, वन इत्यादि तथा चेतन जगत् मानव एवं पशु–पक्षियों द्वारा पर्यावरण को सन्तुलित किया है–

उन्होंने अपनी कालजयी कृति 'कामायनी' का शुभारंभ प्रकृति के विराट् स्वरूप के प्रतिनिधि पर्वतों में श्रेष्ठ, हिमालय पर्वत से ही किया है–

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय–प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन।।"[4]

साथ ही उन्होंने 'कामायनी' में हिमालय की महत्ता, विशालता, उच्चता और गुरुता को वर्णित करते हुए प्रलय में डूबने वाली पृथ्वी को आश्रय देने वाला कहा है।

"विश्व कल्पना सा ऊँचा वह सुख शीतल–संतोष निदान,
और डूबती सी अचला का अवलंबन, मणि–रत्न–निधान।"[5]

'कामायनी' में देवदारु कानन के बीच स्थित साधना–प्रदेश कैलास मानसरोवर के पावन क्षेत्र तथा स्थान–स्थान पर घने वन–वृक्षों, वनस्पतियों, लता–समूहों तथा तृण–समूहों से आच्छादित हिमालय के मनोरम दृश्यों का चित्रांकन किया है–

"अचल हिमालय का शोभनतम, लता–कलित शुचि सानु–शरीर,
निद्रा में सुख–स्वप्न देखता, जैसे पुलकित हुआ शरीर।
उमड़ रही जिसके चरणों में, नीरवता की विमल विभूति,
शीतल झरनों की धारायें, बिखरातीं जीवन–अनुभूति।
संध्या–घनमाला की सुन्दर ओढ़े, रंग–बिरंगी छींट,
गगन–चुम्बिनी शैल–श्रेणियाँ पहने हुए तुषार–किरीट।।"[6]

भारतीय संस्कृति के पुरोधा अन्तः चक्षुओं से दर्शन करने वाले ऋषियों के आश्रम गुरुकुल और तपःस्थल वन प्रदेशों में ही स्थापित किए गए थे। मानव सृष्टि के आदि प्रवर्तक मनु ने भी अपनी तपःस्थली हिमालय को ही बनाया था।

"थी अनन्त की गोद सदृश जो विस्तृत गुहा वहाँ रमणीय।
उसमें मनु ने स्थान बनाया सुन्दर, स्वच्छ और वरणीय।।"[7]

महाकवि कालिदास ने भी 'कुमारसम्भवम्' के प्रारम्भ में हिमालय को अनेक रत्नों एवं जड़ी–बूटियों का भण्डार बताते हुए उसे देवों, किन्नरों, पशुओं इत्यादि सभी को सुख और सन्तोष देने वाला, यज्ञ हेतु सामग्रियों को उत्पन्न करने वाला पृथ्वी को सँभालने की सामर्थ्य रखने वाला बताया है–

"यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्री धरणक्षमं च।

प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्।।''[8]

हिमालय हमारे लिए जड़ प्रकृति मात्र ही नहीं है अपितु अपने सघन वन–वृक्षों, लताओं एवं वनस्पतियों इत्यादि के द्वारा विष–रूपी प्रदूषित वायु (कार्बन डाइ ऑक्साइड) को स्वयं ग्रहण कर प्राणवायु (ऑक्सीजन) तथा स्वस्थ पर्यावरण संरक्षण देकर सृष्टि को नवजीवन प्रदान करता है। यज्ञ भारतीय संस्कृति के आधार हैं तथा ये यज्ञ अनुष्ठान–पर्यावरण शोधक का सर्वोत्तम साधन हैं। यज्ञ भूमि, जल, वायु, ध्वनि के प्रदूषण दूर करने में पूर्णरूपेण सक्षम होते हैं। यज्ञ–प्रक्रिया के अनुसार अग्नि में आहुति के रूप में डाले गये, घृत, सामग्री, समिधायें तथा सुगन्धित, पुष्टिकारक एवं रोगनाशक व अन्य जो भी पदार्थ डाले जाते हैं, वे सभी वायु, जल, पृथ्वी तथा समस्त वातावरण की शुद्धि व पुष्टि करने वाले हैं।

''आ जुहोता हविषा मर्जयध्वम्।।''[9]

अर्थात् सामवेद के उक्त मन्त्र में हवि द्वारा वायुमण्डल को शुद्ध करने की प्रेरणा दी गयी है। अथर्ववेद में एक मन्त्र में कहा गया है कि– अग्नि में दी हुई आहुति वायुमण्डल के रोगाणुओं को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जिस प्रकार नदी झागों को नष्ट करती है–

''इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवावहृत्''[10]

एक सूक्त में वैद्य रोगी को रोग से मुक्त करने हेतु सम्बोधित करते हुए कहता है– मैं यज्ञ में दी हुई आहुति द्वारा अज्ञात रोग एवं राजक्ष्मा रोग से तुझे मुक्त कर देता हूँ–

''मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।''[11]

'कामायनी' में यज्ञ–अनुष्ठान के सन्दर्भ अनेकत्र दृष्टिगत होते हैं। मनु प्रलय से बचने के उपरान्त जल–प्लावन उतर जाने पर अपने निकट संचित अग्नि के द्वारा हिमालय के पद–तल में टकराने वाले सागर–तट पर बैठकर अग्निहोत्र करते हैं तथा अत्यन्त धैर्यपूर्वक जीवन की यात्रा आरंभ करते हैं।

''जलने लगा निरन्तर उनका, अग्निहोत्र सागर के तीर,
मनु ने तप में जीवन अपना किया समर्पण होकर धीर।
अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ, कहीं दूर रख आते थे,
होगा इससे तृप्त अपरिचित, समझ सहज सुख पाते थे।।''[12]

मनु पाकयज्ञ करने के लिए सूखी लकड़ियाँ चुन लाये, जिनके हवन कुण्ड में डालते ही लपटें तीव्रता से उठने लगीं। तब मनु ने अन्न पकाकर पाक–यज्ञ करते हुए उस अन्न की आहुतियाँ जिससे उस यज्ञ–वेदी से अन्न की सुगन्धि से भरा हुआ धुआँ उठा जिससे सम्पूर्ण आकाश और वन सुगन्धि से परिपूर्ण हो गए तथा सम्पूर्ण वायुमण्डल शुद्ध हो गया।

''पाकयज्ञ करना निश्चित कर लगे शालियों को चुनने,
उधर वह्नि–ज्वाला भी अपना लगी धूम–पट थी चुनने।
शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि–अर्चियाँ हुईं समृद्ध,
आहुति की नव धूमगंध से नभ–कानन हो गया समृद्ध।।''[13]

पर्यावरण को सुखमय बनाने में पशु–पक्षियों की महती भूमिका होती है। पशुधन हमारे जीवन का अनिवार्य अंग है। पशुधन के संरक्षण से हमारा जीवन सुख–समृद्धि से ओतप्रोत हो जाता है। इनके सान्निध्य से वायु और भूमिगत दोष दूर हो जाते हैं। इन पशुओं के पार्थिव, दिव्य आरण्य आदि कई भेद हैं। समाज में पशुपालन की अति प्राचीन परम्परा रही है इसलिए यजुर्वेद में कहा गया है–

''पशून् पाहि।''[14]

इन पशुओं की रक्षा करो–

''मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः।''[15]

ये पशु प्रदूषण को दूरकर हमें स्वच्छ वातावरण प्रदान करते हैं, इनकी हिंसा दैविक प्रकोपों को उत्पन्न करती है। अतः पशु–पक्षियों की सुरक्षा पर्यावरण को निर्मित करने हेतु अपेक्षित है। कामायनी में भी श्रद्धा और मनु के मिलन के उपरान्त श्रद्धा पशु–पालन में लीन दृष्टिगत होती है। श्रद्धा का प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न सुन्दर आवास उसके द्वारा पालित पशु की क्रीड़ा से ओतप्रोत हो रहा है। वह पशु को स्नेह से दुलारती है। श्रद्धा के उस दुलार में हृदय की ममता मिली हुई है। वह पशु श्रद्धा के मोह और करुणा की सजीव मूर्ति बन जाता है। वह अपना कोमल हाथ उसके शरीर पर फेरती है। उसका कोमल स्पर्श पाकर पशु भी अपनी पूँछ उठाकर श्रद्धा के प्रति अपना स्नेह प्रकट करता है–

''एक माया! आ रहा था पशु अतिथि के साथ,
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।
चपल कोमल कर रहा फिर सतत पशु के अंग,
स्नेह से करता चमर–उद्ग्रीव हो वह संग।
और वह पुचकारने का स्नेह शवलित चाव,
मंजु ममता से मिला वन हृदय का सद्भाव।''[16]

सत्त्वरजस्तमस् (सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण) की साम्यावस्था रूपिणी प्रकृति सृष्टि का मूलकारण है। वह किसी से उत्पन्न नहीं होता जैसा कि सांख्य दर्शन में कहा गया है–

'मूलप्रकृतिरविकृतिः' (ईश्वरकृष्ण–सांख्यकारिका–3) अर्थात् मूल प्रकृति किसी का कार्य (परिणाम) नहीं है, वस्तुतः वह स्वयं जगत् का कारण है, प्रकृति की पर्यावरण से एकलयता अर्थात् सामञ्जस्य है। जब उन दोनों की एकलयता भंग होती है तभी संतुलन बिगड़ता है तथा पर्यावरण प्रदूषित होता है। प्रकृति और पर्यावरण के असन्तुलित होने में जो कारण बनते हैं उन्हें कविवर जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के सन्दर्भ में त्रिधा (तीन भागों) में वर्गीकृत किया है–

1. अतिभौतिकता
2. अतिबौद्धिकता
3. अतिवैज्ञानिकता

'कामायनी' महाकाव्य में वर्णित है कि ये तीनों ही मर्यादा (सीमा) का अतिक्रमण कर गए थे जिससे विधाता के द्वारा विरचित देवसृष्टि विनष्ट हो गयी थी।

''सुख केवल सुख का वह संग्रह, केन्द्रीभूत हुआ इतना,
छायापथ में नवतुषार का, सघन मिलन होता जितना।''[17]

इन देवताओं ने भौतिक सुखों का इतना अधिक संग्रह किया कि वे सम्पूर्ण सुख देवों के पास इस प्रकार केन्द्रीभूत हो गए जैसे शीतकाल में प्रातःकाल संध्या–समय भाप के श्वेतकणों के पुंजीभूत हो जाने पर घना कुहरा छा जाता है। जिस प्रकार घना कुहरा क्षणिक होता है, उसी प्रकार देवों का पुंजीभूत सुख भी स्थायी नहीं रहा, अपितु कुछ समय में ही विनाश को प्राप्त हो गया। सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ने से सर्वस्व नष्ट हो गया।

''सब कुछ थे स्वायत्त विश्व के–बल, वैभव, आनन्द अपार,
उद्वेलित लहरों से होता, उस समृद्धि का सुख संचार।
वे सब डूबे, डूबा उनका, विभव बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव–सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार।''[18]

उन्होंने सम्पूर्ण संसार के अपार बल, वैभव और आनन्द को अपने अधिकार क्षेत्र में कर लिया था। उनके अभ्युदय से उत्पन्न होने वाला सुख समुद्र की उद्वेलित लहरों के सदृश उमड़ता प्रतीत होता था,

जिसके कारण देवगण उच्छृंखल हो गये थे, वे विलासिता के पारावार में डूब गए और उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी प्रलय के समुद्र में विलीन हो गया।

"भरी वासना–सरिता का वह कैसा था मद–मत्त प्रवाह,
प्रलय–जलधि में संगम जिसका, देख हृदय था उठा कराह।"[19]

जिस प्रकार नदी में बाढ़ आ जाने पर वह प्रबल वेग के कारण अपने तट पर स्थित पदार्थों को नष्ट करती हुई समुद्र में जा गिरती है। उसी प्रकार से देवों की विलास वासना भी उन्मत्तता से भरे प्रबल वेग से देव–सृष्टि का विनाश करती हुई प्रलय के अथाह सागर में विलीन हो गई।

पर्यावरण संरक्षण आज सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक चुनौती है, पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ग्राह के सदृश विश्व को निगलने को उद्यत है। प्रकृति के मूलभूत तत्त्वों का सन्तुलित रूप में रहना ही पर्यावरण है। परन्तु आज प्राकृतिक संसाधनों का बिना सोचे समझे दोहन हो रहा है। जिसके कारण भारतीय समाज में समरसता लुप्त हो रही है। मनुष्य अपनी उदरपूर्ति हेतु वृक्षों को काट–काटकर प्रकृति का विध्वंस कर रहा है जबकि वृक्ष पर्यावरण को शुद्ध करने में सहायक होते हैं। वृक्षों के अभाव में पर्यावरण में प्रदूषण बढ़ता है, यदि वायु प्रदूषित हो जाती है तो वायु के ऊपर आश्रित रहने वाले जीव–जन्तु, पशु–पक्षी आदि सभी प्रभावित होते हैं क्योंकि वायु ही जीवनाधार है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में यही कहा गया है–

"आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।"[20]

इस हेतु पर्यावरण–प्रदूषण को दूर करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन न करके, प्राकृतिक संपदा की रक्षा करनी चाहिए। 'कामायनी' महाकाव्य में भी समरसतामूलक और अखण्ड आनन्द प्राप्ति का मंगलमय संदेश दिया गया है–

"समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।
चेतन का साक्षी मानव, हो निर्विकार हँसता सा,
मानव के मधुर मिलन में गहरे–गहरे धँसता सा।
सब भेद–भाव भुलवा कर दुःख–सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! यह मैं हूँ, यह विश्व नीड़ बन जाता।।"[21]

संदर्भ–

1.ऋग्वेद– 10.18.4

2.कुमारसम्भवम्– 1/1

3.मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० 255

4.जयशंकर प्रसाद, कामायनी, चिन्ता–सर्ग

5.वही, आशा–सर्ग

6.वही

7.वही

8.कालिदास, कुमारसम्भवम्, 1/17

9.सामवेद, 1.7.1

10.अथर्ववेद, 1.8.1

11.अथर्ववेद, 3.11.1

12.कामायनी, आशा–सर्ग

13.वही, आशा–सर्ग

14.यजुर्वेद, 1.1

15.अथर्ववेद, 11.2.1

16.कामायनी, वासना–सर्ग

17.वही, चिन्ता–सर्ग

18.वही

19.वही

20.ऋग्वेद– 10.137.3

21.कामायनी, आनंद–सर्ग